जैनतत्त्वमीमांसा : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० उत्तमचन्द जैन, सिवनी

जैन आम्नायकी प्राचीनतम परंपराकी एक कड़ीके रूपमें विश्रुत हैं—सिद्धान्ताचार्य, पंडितवर्य, श्रीमान् पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, बनारस, जिन्होंने आगम तथा परमागम रूप रत्नाकरकी अतल गहराईयों में डुबकियां लगाकर जिनागमसार रूप रत्नोंको खोज-खोजकर विद्वज्जनों तथा सामान्यजनों के समक्ष प्रस्तुत किया, साथ ही जैनसिद्धान्त एवं तत्त्वज्ञान परम्पराको सम्पोषित एवं संवर्धित भी किया। इसका ज्वलंत प्रमाण एवं अमर स्मारक स्वरूप है उनका प्रकृत ग्रंथ "जैनतत्त्वमीमांसा"।

यद्यपि सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्तग्रंथ षट्खण्डागमकी धवला टीका तथा कषायपाहुडकी जयधवला टीकाके सम्पादनका गुरुतर कार्य, खानियां तत्त्वचर्चाका ऐतिहासिक कार्य तथा अन्य मौलिक साहित्यका सृजन ये सभी कार्य पंडितजीके विशिष्ट व्यक्तित्व एवं उत्कृष्ट कृतित्वके जीवन्त स्मारक हैं, तथापि इनमें अग्रणी, अद्वितीय और अमर-कृति है उनकी "जैनतत्त्वमीमांसा"। सिद्धान्त-ग्रंथोंके संपादन द्वारा आदरणीय पंडितजीने एक ओर तो श्रुतज्ञान रूप जिनवाणीकी प्रथम श्रुतस्कंधरूप सिद्धांतज्ञानधाराका सम्पोषण किया है, दूसरी ओर खानिया तत्त्वचर्चाके सम्पादन द्वारा तार्किक आचार्य समंतभद्रस्वामीकी तथोक्तिको याद कराया है कि "वादार्थी विचराम्यहं नरपते' शार्दूलविक्रीडितम्"। तीसरी ओर मौलिक साहित्य सृजन द्वारा अपनी वर्तमान प्रतिभा एवं व्यक्तित्वका प्रकाशन किया है तथा चौथी ओर जैनतत्त्वमीमांसाके प्रणयन द्वारा द्वितीय श्रुतस्कंध अथवा परमागमरूप जैन अध्यात्मके प्रयोजनभूत, मोक्षमार्गोपयोगी जैनतत्त्वों एवं सिद्धांतोंका मर्मोद्घाटन किया है। इस प्रकार माननीय पंडितजीकी चौमुखी प्रतिभा, बहुश्रुतज्ञता, जिनागमतत्त्वमर्मज्ञता एवं सैद्धांतिक दृढ़ता क्रमशः विज्ञोंको वात्सल्यकारी, अल्प-श्रुतज्ञोंको आश्चर्यकारी, कल्याणेच्छुकोंको सन्मार्गप्रकाशनहारी तथा अनुदारजनोंको ईर्ष्याकारी सिद्ध हुई है। यहाँ हम उनकी अमूल्यकृति "जैनतत्त्वमीमांसा"का परिचय, प्रतिपाद्य एवं समीक्षण प्रस्तुत करनेका उद्यम करते हैं।

जैनतत्त्वमीमांसाके दो संस्करण हमारे समक्ष हैं—प्रथम २०० पृष्ठीय लघुकाय पुस्तक तथा द्वितीय ४२२ पृष्ठीय बृहद्काय ग्रंथ। उक्त दोनों संस्करणोंमें आत्मनिवेदनके माध्यमसे ग्रंथ रचनाका अपना उद्देश्य लेखक महोदय ने स्पष्ट किया है। द्वितीय संस्करणमें प्रथम संस्करणके वर्णित प्रकरणोंमें जो भी परिवर्धन या परिवर्तन किया है उसकी स्पष्ट सूचना की है—यथा प्रथम संस्करणमें तीसरे अध्यायका नाम "निमित्तकी स्वीकृति" तथा चौथेका नाम "उपादान और निमित्तमीमांसा" रखा था किंतु द्वितीय संस्करणमें उनके परिवर्तित नाम क्रमशः—"बाह्यसाधनमीमांसा" तथा "निश्चय उपादान मीमांसा" दिये हैं। पंडितजीने इन प्रकरणोंके नाम परिवर्तनका कारण सयुक्तिक एवं सप्रमाण स्पष्ट किया है। पांचवें "उभयनिमित्त मीमांसा" स्वतंत्र अध्यायके रखनेका कारण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "निश्चय उपादानके अनुसार प्रत्येक द्रव्यके कार्यरूप परिणत होते समय उसके अनुकूल बाह्य सामग्रीका योग नियमसे बनता ही है।" इस तथ्यको हृदयंगम कराना मुख्य प्रयोजन रहा है। शेष अध्यायोंको प्रथम संस्करण अनुसार ही रखा गया है। पंडितजीने अपने निवेदनमें यह भी स्पष्ट किया है कि प्रकृत ग्रंथमें वर्णित विषयोंका याथातथ्य परिज्ञान न होनेसे स्वरूप विपर्यास, कारणविपर्यास एवं भेदाभेद विपर्यास बना ही रहता है जिससे अनेक शास्त्रोंमें पारंगत होकर प्रांजल वक्ता बन जाने पर भी उसकी मोक्षमार्गकी ओर गति नहीं हो पाती। यथार्थमें निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्गका प्रारंभ आगे पीछे नहीं अपितु एक साथ ही होता है। निश्चय मोक्षमार्गका अनुसर्ता व्यवहारमोक्षमार्ग होता है किंतु व्यवहारमोक्षमार्गका अनुसर्ता निश्चय मोक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग नहीं होता बल्कि जैसे-जैसे निश्चयमोक्षमार्गसे जीवन पुष्ट होता जाता है वैसे वैसे व्यवहार मोक्षमार्ग छूटता जाता है। उपर्युक्त तथ्योंके अतिरिक्त खानिया तत्त्वचर्चाका संक्षिप्त इतिहास भी प्रस्तुत किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट घोषणा की है कि जो विद्वान् वीतराग अर्हतकी आगम परम्पराको नहीं देखना चाहते, वे भट्टारक परंपराके समर्थनके साथ आम जनताका अपने पक्षपोषणार्थ दुरुपयोग करते हैं, निकृष्ट तरीकोंसे अध्यात्मके साहित्यका बहिष्कार करते हैं। अन्य कई प्रकारके षड्यंत्र रचकर अध्यात्मपक्ष पर अज्ञान आवरण डालने का प्रयास करते हैं, जो खेदकी बात है। इस प्रकार ग्रंथका आत्मनिवेदन अपने आपमें ग्रंथका हार्द एवं मर्म समाहित किये हुए है। वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीमान् जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनीने प्राक्कथन लिखकर ग्रंथकी महत्ता पर स्पष्ट प्रकाश डाला है। साथ ही विद्वानोंको सावधान करते हुए दिशानिर्देशके रूपमें लिखा है कि विद्वान् केवल समाजके मुख नहीं हैं। वे आगमके रहस्योद्‌घाटन के जिम्मेदार हैं। अतः उन्हें हमारे अमुक वक्तव्यसे समाजमें कैसी प्रतिक्रिया होती है, वह अनुकूल होती है या प्रतिकूल यह लक्ष्यमें रखना जरूरी नहीं है। यदि उन्हें किसी प्रकारका भय हो भी तो सबसे बड़ा भय आगम का होना चाहिए। विद्वानोंका प्रमुख कार्य जिनागमकी सेवा है, और यह तभी संभव है जब वे समाजके भयसे मुक्त होकर सिद्धांतके रहस्यको उसके सामने रख सकें। कार्य बड़ा है। इस कालमें इसका उनके ऊपर उत्तरदायित्व है, इसलिए उन्हें यह कार्य सब प्रकारकी मोह ममताको छोड़कर करना ही चाहिए। समाजका संधारण करना उनका मुख्य कार्य नहीं हैं।' ये शब्द सचमुचमें विद्वानोंको प्रकाशस्तम्भ समान हैं। अस्तु।

तत्पश्चात् विषयप्रवेश प्रकरणसे ग्रन्थारम्भ होता है। समग्र ग्रन्थ १२ अधिकारोंमें विभाजित है, जो इस प्रकार हैं—(१) विषयप्रवेश, (२) वस्तुस्वभाव मीमांसा (३) बाह्यकारण मीमांसा, (४) निश्चय उपादान-मीमांसा, (५) उभयनिमित्तमीमांसा, (६) कर्तृकर्ममीमांसा (७) षट्कारकमीमांसा, (८) क्रमनियमित पर्याय-मीमांसा, (९) सम्यक् नियतिमीमांसा, (१०) निश्चय व्यवहारमीमांसा, (११) अनेकांत-स्याद्वादमीमांसा तथा (१२) केवलज्ञान स्वभाव मीमांसा।

प्रत्येक अध्याय अपने-अपने नाम द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषयकी घोषणा करता है। प्रत्येक अध्यायगत प्रतिपाद्य विषयका सारांश इस प्रकार है—

आचार्य अकलंकदेवने आप्तमीमांसा पद्य ५ में वस्तुका स्वरूप उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्यात्मक अर्थात् त्रितयात्मक होता है' यह सिद्ध करते हुए एक उदाहरण दिया है कि स्वर्ण घटका इच्छुक एक मनुष्य स्वर्णकी घटपर्यायके नाश होनेपर दुःखी होता है, स्वर्ण मुकुटका इच्छुक दूसरा मनुष्य स्वर्णकी घटपर्यायके व्यय तथा मुकुट पर्यायकी उत्पत्ति होनेपर हर्षित होता है और मात्र स्वर्ण (द्रव्य) का इच्छुक तीसरा मनुष्य स्वर्णकी घट पर्यायके नाश तथा मुकुट पर्यायकी उत्पत्तिमें न तो दुःखी होता है और न ही हर्षित, किन्तु मध्यस्थ रहता है। इन तीन मनुष्योंके कार्य अहेतुक नहीं हो सकते। अतः सिद्ध है कि स्वर्णकी घट पर्यायके नाश तथा मुकुट पर्यायकी उत्पत्ति होने पर भी स्वर्णका न तो नाश होता है और न उत्पाद ही। स्वर्ण तो घट या मुकुट आदि अवस्थामें स्वर्ण ही बना रहता है। यह वस्तुस्वभावकी मीमांसाका सार है।

बाह्यकारणकी मीमांसा दो दृष्टियोंसे की गई है प्रथम ऋजुसूत्रनय तथा द्वितीय नैगमनयकी दृष्टि। ऋजुसूत्रनय पर्यायार्थिक नयोंमें प्रमुख है। वह—एक समयवर्ती पर्यायको विषय करता है अतः इस नयकी अपेक्षा उत्पाद और व्यय दोनों निर्हेतुक होते हैं। यह नय पर सापेक्ष कथनको विषय नहीं करता। देखिये जयधवला पुस्तक १ पृ० २०६-२०७। नैगमनय द्रव्यार्थिक नयोंमें प्रमुख है। संकल्पप्रधान होनेसे यह नय सत्-असत्

८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनोंको विषय करता है। साथ ही गौण-मुख्य भावसे द्रव्य और पर्याय दोनोंको विषय करता है परन्तु मुख्य-रूपसे इसका विषय उपचार है। देखिये जयधवला पु० १, पृ० २०१।

सामान्यतः कारणका लक्षण धवलाकार इस प्रकार किया है कि "जो जिसके होनेपर ही होता है, नहीं होनेपर नहीं होता। वह उसका कारण कहलाता है।" देखिये धवला पुस्तक १२ पृ० २८९। इससे स्पष्ट है कि कारण तथा कार्यमें अविनाभाव सम्बन्ध नियम रूपसे घटता है चाहे वह बाह्य साधन हो या अन्तरंग साधन। यद्यपि सहकारीकारण भिन्नद्रव्य है, भिन्नद्रव्यरूप सहकारी कारणके साथ एकद्रव्यप्रत्यासत्ति-का अभाव है तथापि उनमें एककालप्रत्यासत्तिका सद्भाव होनेसे कारण कार्यभाव स्वीकार किया गया है। देखिये प्रमेयरत्नमाला अध्याय ३, सूत्र ६० की टीका। उपरोक्त कारण-कार्यपना परमार्थभूत नहीं है अपितु उपचरित मात्र है। उदाहरणार्थ—बुद्धिमान लोग ग्रहों तथा हस्तरेखाओं आदिसे आगामी घटनाओंका अनुमान कर लेते हैं। उसके वे ज्ञापक निमित्त हैं, उन होनेवाली घटनाओंके कारकनिमित्त नहीं हैं। इस तथ्यका समाधान धवला पु० ६, पृ० ४२३ के इस कथनसे होता है कि नारकियोंको सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें जो वेदना कारण होती है, वह वेदना ज्ञापक निमित्तमात्र है, कारक निमित्त नहीं। अन्यथा वेदनाके निमित्तसे सभी नारकियोंको नियमतः सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका प्रसंग बनेगा, जो असम्भव है।

निश्चय उपादान मीमांसा—निश्चय उपादान कारणका स्वरूप निर्देश आचार्य विद्यानन्दस्वामीने अपने ग्रन्थ अष्टसहस्रीमें इस प्रकार किया है कि जो द्रव्य तीनों कालोंमें अपने रूपको छोड़ता हुआ और नहीं छोड़ता हुआ पूर्वरूपसे और अपूर्वरूपसे वर्त रहा है, वह उपादान कारण है। इससे स्पष्ट है कि द्रव्यका न तो केवल सामान्य अंश उपादान कारण होता है और न केवल विशेष अंश उपादान होता है किन्तु सामान्य विशेषात्मक द्रव्य ही निश्चय उपादान होता है। इस तथ्यका समर्थन आचार्य कार्तिकेयकृत कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा २२५ से २२८ द्वारा होता है। इसी ग्रन्थमें गाथा २३० में स्पष्ट घोषणा की गई है कि अनन्तरपूर्व परिणामयुक्त द्रव्य ही कारणरूपसे प्रवर्तित होता है और अनन्तर उत्तर परिणामसे युक्त वही द्रव्य नियमसे कार्य होता है।

उभयनिमित्त मीमांसा—इस प्रकरणमें यह बात स्पष्ट की गई है कि निश्चय उपादानकारण नियमसे कार्यका नियामक होता है तथा व्यवहार (निमित्त) कारण उसका अविनाभावी बाह्य अनुकूल रूपमें उपस्थित होता है किन्तु व्यवहारकारण निश्चयका स्थान नहीं ले सकता। इन दोनोंमें विन्ध्यगिरि तथा हिमगिरि समान अन्तर है, क्योंकि निश्चयकारण कार्यरूपद्रव्यके स्वरूपमें अन्तर्निहित रहता है तथा व्यवहारकारण बाह्य वस्तु है। आचार्य समन्तभद्रस्वामीने तो घोषणा की है कि बाह्य (निमित्त) तथा अन्तरंग (उपादान) की सन्निधिमें ही सभी कार्य होते हैं ऐसा वस्तुगत स्वभाव है, अन्य प्रकारसे वस्तुस्वभावकी सिद्धि नहीं होती, इसलिए आप ऋषियों तथा बुद्धिमानों द्वारा पूज्य हो। (देखिये स्वयंभूस्तोत्र पद्य ६०) उन्होंने यह भी कहा कि गुण-दोष रूप कार्यकी उत्पत्तिमें जो भी बाह्यवस्तु कारण कही जाती है वह निमित्तमात्र है, उस कार्यकी उत्पत्तिका मूलहेतु तो अभ्यन्तर (उपादान) ही है, इसलिए अध्यात्म मार्गी जनोंको वह अभ्यन्तर कारण ही पर्याप्त है अर्थात् निमित्ताधीन—पराधीन दृष्टिका परित्याग तथा उपादान-स्वाधीन दृष्टिके आश्रयमें ही कल्याण निहित होता है। अस्तु! (देखिये स्वयंभूस्तोत्र ५९)।

कर्तृकर्ममीमांसा—यह प्रकरण मोक्षमार्गीको सर्वाधिक महत्त्वका है कारण कि कर्त्ता-कर्मकी भूल समस्त तत्त्वोंकी भूलोंकी मूल है। कर्त्ता-कर्मकी भूल मिटनेपर समस्त भूलें मिट जाती हैं। जो स्वतंत्रपने अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यको करे उसे कर्ता कहते हैं, जो कार्य होता है वही कर्म है। वास्तवमें समस्त द्रव्योंमें परस्पर कर्ताकर्म सम्बन्ध है ही नहीं, फिर भी भिन्न द्रव्यका भिन्न द्रव्यसे कर्ताकर्म सम्बन्ध कहना व्यवहार कथनमात्र है, निश्चयसे तो कर्ता-कर्म सम्बन्ध एक ही वस्तुमें घटित होता है। जो परिणमन करे वही कर्ता है, जो परिणाम है, वही कर्म है तथा जो परिणति है वही क्रिया है, परमार्थसे तीनों वस्तुमय है, वस्तुसे भिन्न नहीं है। इससे स्पष्ट है कि कर्ताकर्म सम्बन्ध एक ही द्रव्यमें तथा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दो द्रव्योंमें घटित होता है। अतः जिनागममें जहाँ भी बाह्यद्रव्यको कर्ता कहा गया हो, उसे उपचरित (व्यवहार) कथनमात्र समझना चाहिए। एक कार्यके दो कर्ता भी नहीं होते, दो कर्ताओंका एक कार्य नहीं होता क्योंकि एक एक ही रहता है, अनेक नहीं हो सकता। अस्तु। देखिये समयसारके कलश क्रमांक २००, २१०, ५१, ५४)।

षट्कारकमीमांसा—क्रियाके प्रतिप्रयोजकको कारक कहते हैं। कारक ६ होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। ये षट्कारक भी एक ही द्रव्यमें घटित होते हैं तथा पर्याय दृष्टिसे एक ही पर्यायमें षट्कारक होते हैं, अन्य द्रव्यके साथ कारकपना कहना उपचार मात्र जानना चाहिए-परमार्थ नहीं। वास्तवमें अनादिकालसे जीव स्वाश्रयपनेको भूलकर परद्रव्योंसे कारकपनेका विकल्प करके पराश्रित बना हुआ है अत. आत्मकल्याणार्थ, स्वाश्रित षट्कारक दृष्टिका ग्रहण तथा पराश्रित षट्कारक दृष्टिका ग्रहण ही कार्यकारी है।

क्रमनियमितपर्याय मीमांसा—यह प्रकरण पंडितजीने सविस्तार, सतर्क तथा सप्रमाण स्पष्ट किया है, जो स्पष्टीकरण उनके बाद क्रमबद्धपर्याय पर कलम चलाने वाले लेखकोंको मार्गदर्शक तथा मुख्य आधार रहा है। क्रमबद्ध पर्यायका अर्थ है, प्रत्येक कार्य अपने स्वकालमें ही होता है। तात्पर्य यह है कि सभी द्रव्यों-की उनके सभी गुणोंकी त्रिकालवर्ती पर्यायें अपने-अपने नियत कालमें ही होती हैं इसे ही क्रमबद्ध या क्रमनिय-मित पर्याय कहते हैं। सर्वज्ञ स्वभावकी स्वीकृतिमें सर्वद्रव्योंकी क्रमबद्धपर्यायोंकी स्वीकृति भी अनिवार्य हैं क्योंकि क्रमबद्ध पर्यायके निषेधमें सर्वज्ञस्वभावके निषेध होनेका प्रसंग बनता है। इस सिद्धान्तको स्वीकारनेसे अनादि संसारका मूल जो विकल्पजाल है वह स्वयमेव विनष्ट होने लगता है, मुक्ति, होनहार, काललब्धिका परिपाक, पूर्णसुख प्राप्तिका अवसर इत्यादि सभी क्रमबद्धमें समीप आने लगते हैं तथा इसके अस्वीकारसे मुक्तिका मार्ग एवं मुक्ति दोनों क्रमबद्धमें अत्यन्त दूर रहते हैं। कर्तापनेका जहर उतरने लगता है तथा अकर्तापनेका अमृतपान का लाभ होता है।

उपरोक्त विषयोंकी मीमांसाके अतिरिक्त सम्यक्नियतिस्वरूपमीमांसा, निश्चय-व्यवहार मीमांसा, अनेकान्त-स्याद्वाद मीमांसा तथा केवलज्ञान स्वभावमीमांसा इन प्रकरणोंपर सुविशद, सुस्पष्ट विवेचनके साथ यह अनोखा ग्रंथ समाप्त होता है।

सारांश—साररूपमें हम कह सकते हैं कि "जैनतत्त्वमीमांसा" तत्त्वसे अनभिज्ञ जनोंको ज्ञानप्रदाता, जिनागम अभ्यासियोंको मुक्तिमार्गप्रदर्शक, वस्तुस्वरूपके गूढ़तम-सिद्धान्तोंकी गुत्थियाँ सुलझानेवाला, विज्ञजनोंके हृदय कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाला अद्वितीय, अजोड़, अमरकृति एवं पंडितजीके व्यक्तित्वका अमर स्मारक स्वरूप ग्रन्थ है। यदि जिनागम सागरके मंथनसे प्राप्त नवनीतका रसास्वादन करना हो, जिन प्रवचनोंका परमामृत चखना हो, दर्शनविशुद्धि पाकर मुक्तिमार्गमें गति करना हो तो प्रत्येक आत्मार्थीके लिए 'जैनतत्त्व-मीमांसा' अवश्य ही सदाशयताके साथ, गम्भीरतापूर्वक, अध्ययन, मनन एवं हृदयंगम करने योग्य है 'इत्यलं सुविज्ञेषु।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org